## खण्ड – 4 : सिद्धान्त और वाद

## इकाई – 3 : मनोविश्लेषण तथा अस्तित्ववाद

### इकाई की रूपरेखा


4.3.00. उद्देश्य
4.3.01. प्रस्तावना
4.3.02. मनोविश्लेषणवाद का उद्भव
4.3.03. फ्रायड का मनोविश्लेषण सिद्धान्त
  4.3.03.1. चेतना के स्तर
  4.3.03.2. व्यक्तित्व की संरचना
  4.3.03.3. अहम् रक्षा युक्तियाँ
  4.3.03.4. व्यक्तित्व-विकास की अवस्थाएँ
  4.3.03.5. स्वप्न-विश्लेषण
4.3.04 नव-मनोविश्लेषणवाद
  4.3.04.1. अल्फ्रेड एडलर
  4.3.04.2. कैरेन हार्नी
  4.3.04.3. कार्ल गुस्ताफ़ युंग
  4.3.04.4. ज़्यॉक़ लकाँ
4.3.05. मनोविश्लेषणवाद और साहित्य
4.3.06. अस्तित्ववाद का अर्थ और विषयक्षेत्र
4.3.07. अस्तित्ववाद का उद्भव और विकास
4.3.08. अस्तित्ववाद की मुख्य विशेषताएँ
  4.3.08.1. सार से पहले अस्तित्व
  4.3.08.2. तथ्यता
  4.3.08.3. लोकोत्तरता (परात्मकता)
  4.3.08.4. प्रामाणिकता
  4.3.08.5. स्वतन्त्रता, मूल्य और दायित्व-बोध
  4.3.08.6. शून्यता या अभाव
  4.3.08.7. प्रतिवाद
  4.3.08.8. चिन्ता, वेदना और निराशा
  4.3.08.9. असंगतता
4.3.09. अस्तित्ववाद का साहित्य पर प्रभाव
4.3.10. पाठ का सारांश
4.3.11. उपयोगी पुस्तकें और सन्दर्भ
  4.3.11.1. हिन्दी की पुस्तकें
  4.3.11.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें

4.3.11.3. इंटरनेट स्रोत

4.3.12. अभ्यास के लिए प्रश्न

**4.3.00. उद्देश्य**

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

4.3.00.1. मनोविश्लेषणवादी आलोचना के मुख्य आधारों को समझ सकेंगे।

4.3.00.2. मनोविश्लेषण के विभिन्न सिद्धान्तों से परिचित हो सकेंगे।

4.3.00.3. साहित्य और आलोचना पर मनोविश्लेषण के प्रभाव का विश्लेषण कर पाएँगे।

4.3.00.4. अस्तित्ववाद के स्वरूप को जान सकेंगे।

4.3.00.5. प्रमुख अस्तित्ववादी चिन्तकों के विचारों से अवगत हो पाएँगे।

4.3.00.6. साहित्य पर अस्तित्ववाद के प्रभाव को समझ सकेंगे।

**4.3.01. प्रस्तावना**

अब तक आप पाश्चात्य सिद्धान्तों के अन्तर्गत स्वच्छन्दतावाद और मार्क्सवाद के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप पाश्चात्य देशों में उद्भूत दो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करेंगे । पहले आप मनोविश्लेषणवाद और बाद में अस्तित्ववाद की मूल स्थापनाओं और प्रमुख सिद्धान्तकारों के बारे में जानेंगे।

मनोविश्लेषण मानव मन को समझने का सिद्धान्त है। यह मनोविज्ञान की एक शाखा है। मनोविज्ञान व्यापक रूप से मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन करता है। इसकी मान्यता है कि मनुष्य के मन और शरीर में निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है। इसलिए मनुष्य के व्यवहार का सम्पूर्ण अध्ययन और रोगों का निदान मनो-दैहिक उपागम से ही किया जा सकता है। मूलत: एक मनोचिकित्सकीय सिद्धान्त होते हुए भी मनोविश्लेषण कला और साहित्य सहित अन्य अनुशासनों के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सिद्ध हुआ है। मनोविश्लेषण के विकास और विवेचन में फ्रायड के साथ-साथ अल्फ्रेड एडलर, कैरेन हार्नी, कार्ल गुस्ताफ़ युंग और ज़्याँक़ लकाँ आदि अन्य मनोवैज्ञानिकों और चिन्तकों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

अस्तित्ववाद एक व्यक्ति-केन्द्रित दर्शन है। विज्ञान का विरोधी न होकर भी मुख्य रूप से इसका लक्ष्य समाज के स्तरहीन, हल्के और रूढ़िवादी सामाजिक और आर्थिक दबावों के बीच मानव व्यक्ति की पहचान और अर्थवत्ता की खोज है। अस्तित्ववाद स्वतन्त्रता का दर्शन है। इसका आधार यह तथ्य है कि हम अपने जीवन से

दूरी बनाकर अपने कार्यों का अवलोकन कर सकते हैं। इस अर्थ में हम सदैव अपने आप से अधिक या ऊपर होते हैं। लेकिन हम जितने स्वतंत्र हैं उतनी ज़िम्मेदारी भी हमारे ऊपर है।

### 4.3.02. मनोविश्लेषणवाद का उद्भव

मनोविश्लेषण के सिद्धान्त के जनक ऑस्ट्रिया के चिकित्सक सिगमंड फ्रायड (1856-1939) थे। फ्रायड एक चिकित्सक थे और उन्होंने अपना सिद्धान्त अपने पेशे के दौरान विकसित किया था। प्रारम्भ में उन्होंने अपने मरीजों की शारीरिक और संवेगात्मक समस्याओं का उपचार सम्मोहन विधि के माध्यम से किया। इस दौरान उन्होंने पाया कि उनके अधिकांश रोगी चाहते थे कि उनकी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक बात की जाय। जब उनसे बात कर ली जाती तो वे अच्छा महसूस करते थे। फ्रायड ने मन के आन्तरिक प्रकार्यों को समझने के लिए 'मुक्त साहचर्य', 'स्वप्न विश्लेषण' और 'त्रुटियों के विश्लेषण' की विधियों का उपयोग किया।

1922 में विश्वकोश के एक लेख में फ्रायड ने अपनी इस खोज के सम्बन्ध में लिखा है कि मनोविश्लेषण उन मानसिक प्रक्रियाओं का पता लगाने की क्रियाविधि का नाम है जिनका पता अन्यथा किसी भी तरह से नहीं लगाया जा सकता। यह मनोरोगों के उपचार की एक विधि है, जो धीरे-धीरे एक वैज्ञानिक अनुशासन का रूप ग्रहण कर रही है। मनोविश्लेषण-चिकित्सा का आधारभूत लक्ष्य दमित अचेतन सामग्रियों को चेतना के स्तर पर ले आना है ताकि लोग अपेक्षाकृत अधिक आत्म-सजक और सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके।

फ्रायड ने मनोविश्लेषण विधि के वैज्ञानिक स्वरूप का वर्णन करते हुए बताया है कि इसका उपयोग भाषा शास्त्र, जीवविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षा और सौन्दर्यशास्त्र जैसे ग़ैर-नैदानिक अनुशासनों में भी सम्भव है। फ्रायड अपने इस सिद्धान्त के उपयोग के सम्बन्ध में बहुत आशावादी थे और उसको जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू करने का विचार रखते थे। उन्होंने यह दिखाया है कि कला और साहित्य की रचनाओं का मनोविश्लेषण विधि से सृजन और मूल्यांकन किया जाना चाहिए। स्वयं फ्रायड का लेखन अनेक साहित्यिक उदाहरणों औरसन्दर्भों से भरा हुआ है। विशेष रूप से उन्होंने गेटे और शिलर जैसे क्लासिकीय जर्मन लेखकों की रचनाओं का बहुत उपयोग किया है।

### 4.3.03. फ्रायड का मनोविश्लेषण सिद्धान्त

मनोविश्लेषण-सिद्धान्त के विकास में अनेक सिद्धान्तकारों ने अपना योगदान दिया है, लेकिन इस क्षेत्र में सिगमंड फ्रायड के सिद्धान्त आधारभूत और युगान्तकारी हैं। मनोविश्लेषण के अन्य सभी सिद्धान्त अपनी मौलिक अवधारणाओं के लिए फ्रायड के ऋणी हैं। फ्रायड के मनोविश्लेषण की मुख्य विशेषता मानव-मन के अचेतन पक्षों के उद्घाटन के आधार पर मनुष्य के व्यक्तित्व और व्यवहार का अध्ययन करना है। मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्धारण में माता और पुत्र का जन्मजात सम्बन्ध बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

फ्रायड के अनुसार जीवन और जगत् के साथ विविध सम्बन्धों में जुड़ने के लिए बाल्यावस्था में पुत्र और माँ के बीच विकसित काल्पनिक सम्बन्ध-सूत्र को तोड़ना ज़रूरी है और यह कार्य पिता करता है। पिता के हस्तक्षेप के कारण पुत्र को माँ के प्रति अपनी यौन-कामना त्यागनी पड़ती है। वह देखता है कि पिता के पास शिश्न है जो माँ के पास नहीं है। उसे डर लगता है कि अगर उसने पिता के प्राधिकार का उल्लंघन किया तो उसे भी माँ की तरह ही शिश्नविहीन होना पड़ सकता है। बधियाकरण के भय से बालक के मन में मातृ-मनोग्रंथि का जन्म होता है। मातृ-मनोग्रंथि का विकास पुत्र को माता का मोह छोड़ने के लिए बाध्य करता है। माता के प्रति अपनी अप्रकट यौन भावना के इस नकार को फ्रायड ने आदिम आत्म-दमन की संज्ञा दी है। आत्म-दमन के कारण ही व्यक्ति के अवचेतन की सृष्टि होती है। अवचेतन की मानसिक प्रक्रियाएँ व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार की निर्धारक होती हैं। आइए, फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के मुख्य पहलुओं की जानकारी प्राप्त करें।

### 4.3.03.1. चेतना के स्तर

फ्रायड के सिद्धान्त में संवेगात्मक द्वन्द्वों के स्रोतों और परिणामों के साथ-साथ उनके प्रति लोगों द्वारा की जाने वाली प्रतिक्रिया पर भी विचार किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार मानव-मन के तीन स्तर होते हैं। प्रथम स्तर 'चेतन' है, जिसके अन्तर्गत वे अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ और मानसिक क्रियाएँ आती हैं जो वर्तमान से सम्बन्धित होती हैं और जिनके प्रति लोग जागरूक होते हैं। दूसरा स्तर 'पूर्व-चेतन' है जिसके अन्तर्गत ऐसे भाव, विचार और इच्छाएँ आदि मानसिक क्रियाएँ आती हैं जो वर्तमान चेतन में नहीं होतीं, लेकिन प्रयास करने या सावधानी से उन पर ध्यान केन्द्रित करने पर लोग उनके प्रति जागरूक हो जाते हैं, वे उनके चेतन में आ जाती हैं। चेतना का तीसरा स्तर 'अवचेतन' है जिसके अन्तर्गत ऐसी मानसिक प्रक्रियाएँ आती हैं जिनके प्रति लोग जागरूक नहीं होते हैं।

फ्रायड के अनुसार मनुष्य का अवचेतन उसकी मूल प्रवृत्तियों और पाशविक आवेगों का भंडार होता है। इसके अन्तर्गत वे सभी विचार और इच्छाएँ होती हैं जिनकी पूर्ति व्यक्ति नहीं कर पाता है। ये विचार और भावनाएँ चेतन रूप से जागरूक स्थिति से छिपे हुए और अवचेतन में दबे हुए होते हैं। ये दबे-छिपे संवेग मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व पैदा करते हैं। इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध व्यक्ति की कामेच्छाओं से होता है जिन्हें अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता इसलिए उनका दमन कर दिया जाता है। मनुष्य की चेतना का 'अवचेतन' स्तर आवेगों की अभिव्यक्ति के समाज-स्वीकृत तरीके ढूँढता है अथवा उन आवेगों को अभिव्यक्त होने से रोकने के लिए संघर्ष करता है। इस संघर्ष में असफल होने पर व्यक्ति अपसामान्य व्यवहार करता है।

### 4.3.03.2. व्यक्तित्व की संरचना

मनोविश्लेषण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व के तीन भाग होते हैं – इदम् (इड), अहम् (ईगो) और पराहम् (सुपर ईगो)। ये व्यक्तित्व की वास्तविक भौतिक संरचनाएँ न होकर केवल सम्प्रत्यय हैं। ये तीनों तत्त्व अवचेतन में ऊर्जा के रूप में होते हैं और लोगों के व्यवहार के तरीकों से इनके बारे में अनुमान लगाया जाता है।

1. **इदम् (इड)** - यह व्यक्ति की मूल प्रवृत्ति का स्रोत होता है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति की आदिम आवश्यकताओं , कामेच्छाओं और आक्रामक आवेगों की तात्कालिक तुष्टि से होता है। यह आनन्द के सिद्धान्त पर कार्य करता है। इदम् को नैतिक मूल्यों, समय-स्थान और उचित-अनुचित की कोई परवाह नहीं होती है।
2. **अहम् (ईगो)** - इसका विकास इदम् (इड) से होता है और यह व्यक्ति की मूल-प्रवृत्ति की आवश्यकताओं की संतुष्टि व्यावहारिक आधार पर करता है। यह इदम् (इड) को व्यवहार के उपयुक्त तरीके बताता है अर्थात् उचित-अनुचित का ध्यान रखते हुए सामाजिक नियमों और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कोई कार्य करने का निर्देश देता है। इदम् (इड) जहाँ अवास्तविक माँग और आनन्द-सिद्धान्त से संचालित होता है वहाँ अहम् (ईगो) तर्क और धैर्य के साथ वास्तविकता के सिद्धान्त से संचालित होता है।
3. **पराहम् (सुपर ईगो)** - यह आदर्शवादी या नैतिकता के सिद्धान्त से संचालित होता है। यह व्यक्ति के मानसिक प्रकार्यों की नैतिक शाखा है। पराहम् (सुपर ईगो) व्यक्ति को बताता है कि किसी अवसर विशेष पर उसकी खास इच्छा की संतुष्टि नैतिक है या नहीं। यह इड की मूलप्रवृत्तिक इच्छा पर रोक लगाने के साथ-साथ अहम् को वास्तविक लक्ष्यों से उच्चतर नैतिक लक्ष्यों की ओर निर्देशित करता है।

इस प्रकार फ्रायड के अनुसार मानुष्य का अवचेतन तीन प्रतिस्पर्धी शक्तियों से बना हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति में इन शक्तियों का अस्तित्व अलग-अलग अनुपात और परिमाण में होता है। इदम्, अहम् और पराहम् की सापेक्ष और संतुलित शक्ति व्यक्तित्व की स्थिरता को सुनिश्चित करती है। फ्रायड के अनुसार इदम् व्यक्ति की मूलप्रवृत्तिक ऊर्जा का स्रोत होता है। इदम् को 'जीवन मूल-प्रवृत्ति' (इरोस) और 'मृत्यु मूल-प्रवृत्ति' (थेनेटोस) के नाम से जानी जाने वाली दो शक्तियों से ऊर्जा प्राप्त होती है। फ्रायड ने यौन प्रवृत्ति को जीवन मूल-प्रवृत्ति से अलग महत्त्व देते हुए इसकी ऊर्जा को 'लिबिडो' या कामशक्ति कहा है।

### 4.3.03.3. अहम् रक्षा युक्तियाँ

फ्रायड के अनुसार मनुष्य का अधिकांश व्यवहार दुश्चिन्ता के प्रति उपयुक्त समायोजन अथवा पलायन को प्रतिबिम्बित करता है। अत: लोगों का व्यवहार व्यापक रूप से इस बात से निर्धारित होता है कि उनका अहम् दुश्चिन्ताजनक स्थिति का मुक़ाबला किस प्रकार से करता है। फ्रायड के अनुसार लोग रक्षा युक्तियों के माध्यम से दुश्चिन्ता का परिहार करते हैं। ये रक्षा युक्तियाँ वास्तविकता का रूप बदल देती हैं जिससे व्यक्तित्व का विचलन टल जाता है। लेकिन यदि इन युक्तियों का उपयोग इस हद तक किया जाए की वास्तविकता सच में विकृत हो जाए तो व्यक्ति कुसमायोजित व्यवहार करने लगता है। फ्रायड ने अपने सिद्धान्त में कई प्रकार की रक्षा युक्तियों का उल्लेख किया है। कुछ मुख्य रक्षा युक्तियाँ इस प्रकार हैं :

(i) दमन – यह सबसे महत्त्वपूर्ण युक्ति है। इसमें दुश्चिन्ता पैदा करने वाले विचारों और व्यवहारों को एकदम दबा दिया जाता है। इसे चयनात्मक विस्मरण भी कहा जाता है।

(ii) प्रक्षेपण – अन्यव्यक्तियों या परिस्थितियों के प्रति अपनी मनोवृत्तियों और व्यवहारों को अचेतन रूप से आरोपित कर अहम् को उबार लिया जाता है।

(iii) युक्तिकरण – इसमें व्यक्ति अपने तर्कहीन विचारों और व्यवहारों को तर्कसंगत और स्वीकार्य बनाने का प्रयास करता है।

(iv) अस्वीकरण – इसके अन्तर्गत व्यक्ति वास्तविकता को पूरी तरह अस्वीकार कर देता है।

(v) प्रतिक्रिया निर्माण – इस युक्ति का उपयोग करके व्यक्ति अपनी वास्तविक भावनाओं और इच्छाओं के एकदम विपरीत व्यवहार करते हुए अपनी दुश्चिन्ता का निवारण करता है।

अहम् रक्षा युक्तियों का उपयोग करने वाले लोग इनके प्रति अनभिज्ञ होते हैं और वे इनका उपयोग अपने अवचेतन में करते हैं। ये युक्तियाँ वस्तुत: दुश्चिन्ता से उत्पन्न असुविधाजनक भावनाओं से अहम् को बचाने के अवचेतन तरीके हैं।

### 4.3.03.4. व्यक्तित्व-विकास की अवस्थाएँ

फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व की आन्तरिक बनावट जन्म के समय से ही निश्चित हो जाती है। आन्तरिक पक्ष में कोई भी परिवर्तन अत्यन्त कठिनाई से होता है। फ्रायड ने व्यक्तित्व-विकास का एक पंच अवस्था सिद्धान्त प्रस्तुत किया है जिसे मनोलैंगिक सिद्धान्त भी कहते हैं। संक्षेप में ये पाँच अवस्थाएँ इस प्रकार हैं:

(I) मौखिक अवस्था – यह मनोलैंगिक विकास की प्रथम अवस्था है जो बच्चे के जन्म से लेकर एक वर्ष की उम्र तक रहती है। इस अवस्था में शिशु की सुख प्राप्ति का केन्द्र उसका मुख होता है। बच्चा मुख द्वारा की जाने वाली क्रियाओं जैसे दुधपान, चूसना और चुभलाना आदि द्वारा सुख प्राप्त करता है।

(II) गुदा अवस्था – यह अवस्था एक वर्ष से तीन वर्ष तक रहती है। शरीर का गुदीय क्षेत्र इस अवस्था में सुखदायक भावनाओं का केन्द्र होता है। बच्चा मूत्रत्याग एवं मलत्याग जैसी क्रियाओं से आनन्द का अनुभव करता है।

(III) लैंगिक अवस्था – इस अवस्था में सुख का केन्द्र जननांगों में होता है। चार-पाँच वर्ष की आयु में बच्चे स्त्री और पुरुष में भेद कारण सीखते हैं। इस अवस्था में लड़कों में 'इडीपस' मनोग्रन्थि और लड़कियों में 'इलेक्ट्रा' मनोग्रन्थि विकसित होती है। लड़का अपनी माता के प्रति आकर्षण और पिता के प्रति ईर्ष्या और घृणा का अनुभव करता है, जबकि लड़कियाँ अपने पिता की तरफ लैंगिक रूप से आकर्षित होती हैं और माता से घृणा

करती हैं। अन्तत: इस अवस्था में दोनों मनोग्रथियों का समाधान भी बच्चे प्राप्त कर लेते हैं। लड़का-लड़की दोनों अपने माता-पिता के प्रति लैंगिक या काम भावनाओं का परित्याग करके उन्हें भूमिका-प्रतिरूप मानने लगते हैं, उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं।

(IV) कामप्रसुप्ति अवस्था – इस अवस्था को अव्यक्तावस्था भी कहा जाता है। यह अवस्था छह-सात वर्ष की आयु से शुरू होकर यौवनारम्भ तक होती है। इस अवस्था में बच्चों की अधिकांश ऊर्जा खेल-कूद और अन्य रचनात्मक गतिविधियों में लगती है।

(V) जननेन्द्रिय अवस्था – यह मनोलैंगिक विकास की अन्तिम अवस्था होती है। यह अवस्था यौवनारम्भ से आरम्भ होकर निरन्तर चलती रहती है। इसमें व्यक्ति विपरीत लिंग के व्यक्तियों के साथ समाज स्वीकृत व्यवहार करना सीखता है।

फ्रायड के पंच अवस्था सिद्धान्त के अनुसार बच्चा जब विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था की तरफ़ अग्रसर होता है तो वह अपने आप को समाज के साथ समायोजित करता है। इस दौरान किसी एक अवस्था में असफल हो जाने पर वह 'स्थिरण' की अवस्था में पहुँच जाता है, जहाँ बच्चे का विकास एक आरम्भिक अवस्था तक सिमट जाता है। इसी तरह जब विकास की किसी अवस्था में व्यक्ति द्वारा किया गया समस्याओं का समाधान संतोषजनक नहीं होता है तब व्यक्ति पूर्व की किसी कमतर अवस्था का व्यवहार होता है। यह अवस्था को 'प्रतिगमन' कहलाती है।

**4.3.03.5. स्वप्न-विश्लेषण**

फ्रायड के सिद्धान्त में अवचेतन का स्थान सर्वोपरि है। अवचेतन यथार्थ के प्रति पूरी तरह बेपरवाह होता है। उसे तर्क, कारण या अन्तर्विरोध से कोई सरोकार नहीं होता है। यह पूर्ण रूप से मनोवृत्तियों की संतुष्टि और आनन्द की आकांक्षा का क्षेत्र है। स्वप्न इस क्षेत्र तक पहुँचने का 'राजपथ' है। फ्रायड ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'द इंटरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स' (1900) में सपनों की व्याख्या के आधार पर अवचेतन का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

फ्रायड के अनुसार सपने हमारी इच्छा-पूर्ति के विविध रूप हैं। मनुष्य के अवचेतन द्वारा उसके किसी द्वन्द्व के समाधान स्वरूप सपनों की संरचना होती है। यह संरचना बहुत जटिल और बहुस्तरीय होती है। स्वप्न के दौरान व्यक्ति का 'पूर्व-चेतन' जाग्रत अवस्था की अपेक्षा अपने कर्त्तव्य के प्रति अधिक लापरवाह, फिर भी सचेत होता है। इसलिए अवचेतन अपनी सूचनाओं के अर्थ को कुछ तोड़-मरोड़ कर अलग रंग में प्रस्तुत करता है ताकि पूर्व-चेतन उसकी वास्तविकता को पहचान न सके और उन्हें अभिव्यक्त होने से रोके नहीं। फ्रायड सपनों की व्याख्या के लिए ' सघनन की परिघटना' का विचार प्रस्तुत करता है। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति के स्वप्न में आने वाले किसी भी चित्र या संकेत के अनेक अभिप्राय होते हैं। चूँकि व्यक्ति का अवचेतन उसकी अतृप्त और दमित इच्छाओं को सांकेतिक रूप में सपनों के माध्यम से प्रकट करता है इसलिए सतर्क 'अहम्' स्वप्नावस्था में भी आने वाले चित्रों का निरीक्षण-परीक्षण करता है तथा संदेशों को अबोधगम्य बनाने का पूरा प्रयास करता है। 'पूर्व-चेतन'

और 'अहम्' की पहरेदारी 'प्रच्छन्नता का एक आवरण' बना देती है। फ्रायड के अनुसार सपने एक प्रकार का समझौता है जिससे दमित इच्छाओं की प्रच्छन्न रूप से पूर्ति होती है। सपनों के विश्लेषण से व्यक्ति की मानसिक समस्याओं को सुलझाया जा सकता है।

### 4.3.04. नव-मनोविश्लेषणवाद

फ्रायड के सिद्धान्तों के विकास की दिशा में फ्रायड के समकालीन और परवर्ती मनोवैज्ञानिकों ने अपने नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। इन सिद्धान्तकारों ने फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद की कई मान्यताओं से असहमति प्रकट करते हुए नए अन्वेषण किए हैं। इन सिद्धान्तकारों को नव-मनोविश्लेषणवादी या पश्च-फ्रायडवादी कहा जाता है। इनमें इड और अहम् को अधिक महत्त्व न देकर व्यक्ति-मन की सृजनात्मक क्षमताओं और समस्याओं के समाधान को प्रमुखता दी गई है। इनमें से कुछ सिद्धान्तकारों का संक्षिप्त परिचय यहाँ उपयोगी होगा।

#### 4.3.04.1. अल्फ्रेड एडलर

अल्फ्रेड एडलर (1870-1937) फ्रायड के सहयोगी थे लेकिन फ्रायड से सैद्धान्तिक मतभेद होने पर उन्होंने अपने नए सिद्धान्त प्रस्तावित किए। उनके सिद्धान्त को 'वैयक्तिक मनोविज्ञान' के रूप में जाना जाता है। उसकी आधारभूत मान्यता यह है कि व्यक्ति का व्यवहार उद्देश्यपूर्ण और लक्ष्योन्मुख होता है। प्रत्येक व्यक्ति में चयन और सृजन की क्षमता होती है। हमारे व्यक्तिगत लक्ष्य ही हमारे व्यवहार की मुख्य अभिप्रेरणा होते हैं। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की मूल प्रवृत्ति अपने अहम् को आगे बढ़ाना होता है। अहम् को आगे बढ़ाने की प्रबल इच्छा और जीवन के कठोर यथार्थ के बीच का संघर्ष ही व्यक्ति के मानसिक विकास की मुख्य समस्या है। एडलर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपर्याप्तता और अपराध की भावनाओं से ग्रसित होता है। इससे उसमें 'हीनता मनोग्रन्थि' उत्पन्न होती है। यह हीनता ग्रंथि उसके मन में बाल्यावस्था से ही पैदा हो जाती है। व्यक्तित्व के उचित विकास के लिए इस मनोग्रन्थि पर विजय प्राप्त करना आवश्यक होता है। यह विजय अहम् की स्थापना है। प्रकारान्तर से यही आत्म-स्थापन की प्रवृत्ति है जो व्यक्तित्व-विकास में मुख्य है, कामेच्छा या लिबिडो नहीं।

#### 4.3.04.2. कैरेन हार्नी

कैरेन हार्नी (1885-1952) भी फ्रायड की अनुयायी थीं। उन्होंने फ्रायड के इस विचार को चुनौती दी कि महिलाएँ कमज़ोर होती हैं। उनके अनुसार प्रत्येक लिंग के व्यक्ति में विभिन्न योग्यताएँ और गुण होते हैं। अत: किसी भी लिंग के व्यक्ति को श्रेष्ठ या हीन नहीं माना जा सकता है। महिलाएँ जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों से अधिक प्रभावित होती हैं। उन्होंने व्यक्ति के मनोविकारों का कारण बाल्यावस्था में विक्षुब्ध अन्तरवाइकटिक सम्बन्ध होते हैं। माता-पिता के अनुचित व्यवहार से बच्चे के मन में 'मूल दुश्चिन्ता' की भावना पैदा हो जाती है। यह 'मूल दुश्चिन्ता' बच्चे में आक्रामकता और विरोधी व्यवहार का कारण होती है। हार्नी ने आत्मसिद्धि पर बल देते हुए आशावादी दृष्टि से यह प्रस्ताव किया कि अपने व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन और आत्म-विकास के द्वारा मनुष्य उच्चतर व्यक्तित्व प्राप्त कर सकता है।

### 4.3.04.3. कार्ल गुस्ताफ़ युंग

कार्ल गुस्ताफ़ युंग (1875-1961) भी फ़्रायड के सहयोगी रहे, लेकिन सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण ये फ़्रायड से अलग हो गए और अपने नए सिद्धान्त प्रस्तुत किए। इन्होंने लिबिडो का व्यापक अर्थ लिया और फ़्रायड द्वारा कामवृत्ति पर ज़रूरत से ज़्यादा बल देने की आलोचना की। युंग ने पाया कि मनुष्य का जीवन और व्यवहार काम-भावना एवं आक्रामकता की अपेक्षा आकांक्षाओं और उद्देश्यपरकता से संचालित होता है। उन्होंने व्यक्तित्व का एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसे 'विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान' कहा जाता है। इस सिद्धान्त का मुख्य प्रतिपाद्य यह है कि व्यक्तित्व में प्रतिस्पर्द्धी भावनाएँ और शक्तियाँ सन्तुलन के नियम के तहत समन्वयात्मक रूप में कार्य करती हैं। व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं में कोई अनिवार्य द्वन्द्व नहीं होता है। व्यक्तित्व के विभिन्न घटकों के ऊर्जा आवेगों के बीच एक सन्तुलन पाया जाता है, जिससे व्यक्ति के कार्यों में सार्थकता होती है।

युंग की एक अन्य महत्त्वपूर्ण खोज 'सामूहिक अचेतन' की अवधारणा है, जिसके अनुसार सामूहिक अचेतन में आदिकालीन प्रतिमाएँ अथवा 'आद्य प्ररूप' होते हैं। 'आद्य प्ररूप' सामूहिक अचेतन की अन्तर्वस्तु होते हैं, जो व्यक्तिगत स्तर पर अर्जित नहीं किए जाते, बल्कि वंशानुगत रूप से प्राप्त होते हैं। व्यक्ति को अपने व्यवहार की सुसंगतता के लिए निरन्तर अपने व्यक्तिगत और सामूहिक अचेतन में उपलब्ध ज्ञान के प्रति जागरूक रहना चाहिए। युंग ने अपने प्ररूप विज्ञान में 'अन्तर्मुखी' और 'बहिर्मुखी' दो प्रकार के व्यक्तित्वों का उल्लेख किया है। अन्तर्मुखी व्यक्ति भावुक, एकांतप्रिय, शर्मीले और व्यावहारिक जीवन में अकुशल होते हैं, जबकि बहिर्मुखी व्यक्ति व्यवहार-कुशल, सक्रिय और लोकप्रिय होते हैं।

### 4.3.04.4. ज़्याँक़ लकाँ

फ्रांसीसी मनोचिकित्सक ज़्याँक़ लकाँ (1901-1981) ने भाषावैज्ञानिक दृष्टि से फ़्रायड के सिद्धान्तों के पुनर्पाठ का प्रस्ताव किया। उसने फ़्रायड के आदिम आत्म-दमन सिद्धान्त के अनुशीलन के क्रम में दिखाया कि मातृ-मनोग्रंथि का शिकार होते समय बालक बोलने की उम्र में आ जाता है। इसी समय बच्चे में भाषा के माध्यम से कामना का विकास होता है और वह उस कामना के दमन की प्रक्रिया भी विकसित कर लेता है। व्यावहारिक जीवन में अपनी अतृप्त कामना की पूर्ति के लिए वह जीवन भर माँ के रूप में अपनी खोयी हुई वस्तु की कमी महसूस करता रहता है। मातृ-मनोग्रंथि से मुक्ति के लिए लकाँ ने 'दर्पण-प्रतिबिम्ब' (मिरर- इमेज) का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उसने तर्क दिया कि एक निश्चित अवस्था तक आकार बालक अपने आप को पूर्ण मानने लगता है। दर्पण में स्वयं को देखने पर अर्थात् अपने ही प्रतिबिम्ब से साक्षात्कार होने पर उसे अपनी माँ और स्वयं के बीच के भेद का ज्ञान हो जाता है। बच्चा दर्पण में अपनी जिस छवि को देखता है, वह वास्तविक न होकर उसका प्रतिरूप है। चूँकि दर्पण में दिखाई देने वाला प्रतिबिम्ब अवास्तविक और आभासी होता है, इसलिए उससे आत्म-मोह का एक काल्पनिक संसार निर्मित हो जाता है। इसलिए लकाँ कहता है कि व्यक्ति के जीवन में 'दर्पण-प्रतिबिम्ब' का चरण उसके अहम् के विकास में सहायक तो होता है, लेकिन यह विकास अयथार्थ आधार पर

होता है। इस प्रक्रिया में अन्तत: बालक इस प्रतिबिम्बात्मक संसार से ऊपर उठकर भाषा के प्रतीकात्मक संसार में प्रवेश कर लेता है।

लकाँ के अनुसार हमारे अवचेतन की संरचना भाषा की तरह होती है। अर्थात् अवचेतन भाषाई माध्यमों से अभिव्यक्त होता है तथा भाषा की ही तरह यह एक जटिल और व्यवस्थित संरचना है। व्यक्ति के आत्म की पहचान भाषा में अनुस्यूत है। बालक में 'माँग' के स्थान पर 'कामना' की वृद्धि हो जाती है, जो उसकी अतृप्ति का मुख्य कारण बनती है अर्थात् उसके भीतर 'कमी' की भावना घर कर जाती है। लकाँ के अनुसार यह 'कमी' तथा इस कमी को पूरा करने की संरचनाएँ ही व्यक्ति के अहम् या आत्मपरकता का निर्धारण करती हैं।

### 4.3.05. मनोविश्लेषणवाद और साहित्य

साहित्य सिद्धान्त के रूप में मनोविश्लेषणवाद के अन्तर्गत साहित्यकार के अन्तर्मन के द्वन्द्व का अध्ययन किया जाता है। मनोविश्लेषण में समस्त कलाओं के मूल में दमित और अतृप्त कामनाएँ मानी जाती हैं। अवचेतन में स्थित ये अतृप्त कामनाएँ कला या साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। इसलिए किसी भी कलाकृति का मूल्यांकन और विश्लेषण कलाकार के अन्तर्मन की दशाओं के सन्दर्भ में ही उचित है। कला मनुष्य के अवचेतन में स्थित कामनाओं की मुक्त अभिव्यक्ति का माध्यम प्रदान करती है, जबकि सामाजिक निषेध और नैतिक व्यवस्थाएँ उन्हें दबाती हैं। चेतन और अवचेतन मन में निरन्तर चलने वाले इस द्वन्द्व के अन्तर्गत अवचेतन की कामनाओं का चेतन मन द्वारा उदात्तीकरण होता है। उदात्तीकरण से कुण्ठाएँ दूर हो जाती हैं और व्यक्ति निर्द्वन्द्व भाव से रचनात्मक व्यवहार में अनुरत हो जाता है। उदात्तीकरण की इस प्रक्रिया में मानव जाति के सांस्कृतिक मूल्यों का सृजन होता है। अत: कला और साहित्य उदात्तीकृत मानवीय क्रियाकलाप हैं।

मनोविश्लेषण के अनुसार अवचेतन मन की दमित इच्छाएँ फ़ैंटेसी या रम्यकल्पना के रूप में अभिव्यक्त होती हैं। कलाएँ कल्पना के आधार पर मनुष्य को यथार्थ जीवन के संकटों और कठिनाइयों से निजात दिलाने का उपक्रम हैं। फ्रायड ने मात्र कामशक्ति को ही नहीं, बल्कि 'लिबिडो' (कामशक्ति) सहित इदम् में निहित 'इरोस' और 'थेनेटोस' मूल-प्रवृत्तियों को जीवन के हर क्षेत्र की नियामक शक्तियाँ माना है। ये प्रवृत्तियाँ ही मनुष्य के रचनात्मक क्रियाकलापों तथा कला और साहित्य-सृजन का आधार होती हैं। फ्रायड ने कवियों और दार्शनिकों को अचेतन के अनुसंधाता माना है।

मनोविश्लेषणवाद के अनुसार साहित्यिक रचनाएँ मनुष्य की मानसिक प्रक्रियाओं को परिलक्षित करती हैं। फ्रायड के अनुसार साहित्यिक रचना स्वप्न की तरह अवचेतन मन की ऊर्जा का प्रतिफलन होती है। साहित्यिक रचना रचनाकार के अन्तर्मन को अभिव्यक्त करती है। साहित्यिक कृति में वर्णित जटिल अन्तर्वस्तु और गूढ़ार्थ को विश्लेषित करने तथा प्रतीकों और मिथकों को समझने में मनोविश्लेषणवादी दृष्टि सहायक हुई है। इससे रचनाकार के व्यक्तित्व में छिपे हुए मनोवैज्ञानिक निहितार्थों को पहचानना और रचना के मनोवैज्ञानिक यथार्थ का मूल्यांकन कर पाना सम्भव हुआ।

मनोविश्लेषणवादी आलोचना में एक रचना को लेखक के व्यक्तित्व, उसकी मानसिक दशा, भावनाओं और इच्छाओं की अभिव्यक्ति मान कर उसका मूल्यांकन किया जाता है। मुख्य आधार यह है कि एक साहित्यिक रचना उसके लेखक की मानसिक विशेषताओं से सम्बद्ध होती है। रचना की व्याख्या और विश्लेषण में लेखक के व्यक्तित्व को दृष्टगत रखकर निर्णय दिया जाता है। इस पद्धति में यह माना जाता है कि रचना के अर्थ-ग्रहण की दृष्टि से लेखक और पात्रों के मनोविज्ञान का अध्ययन ज़रूरी है।

### 4.3.06. अस्तित्ववाद का अर्थ और विषयक्षेत्र

मनोविश्लेषणवाद जहाँ मनुष्य की मानसिक प्रक्रियाओं के अन्वेषण के आधार पर जीवन और जगत् को समझने और मानवीय समस्याओं के समाधान का प्रयास करता है, वहीं मनुष्य को ही केन्द्र में रखकर अस्तित्ववाद मनुष्य के उद्भव और अस्तित्व को समझने की दृष्टि देता है। अस्तित्ववाद मनुष्य के अस्तित्व अर्थात् सत्ता का दर्शन है। यह पारम्परिक भौतिकवादी और प्रत्ययवादी सिद्धान्तों का विरोध करता है। यह किसी विशेष विचार या प्रत्यय के स्थान पर व्यक्ति की स्वतन्त्रता, चयन और अस्तित्व को प्रमुखता प्रदान करता है। अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य की सत्ता विलक्षण है, उसका किसी भी मानवेतर सत्ता के साथ कोई मेल नहीं हो सकता। अस्तित्ववाद अनिश्चितता के विरुद्ध उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यवाही पर बल देता है। इसका दावा है कि मानव अस्तित्व के बारे में चिन्तन ऐसी नई श्रेणियों की माँग करता है जो मानवीय चिन्तन के इतिहास में पहले नहीं थीं। मनुष्य को न तो निश्चित गुणयुक्त तत्त्व के रूप में समझा जा सकता है और न ही एक ऐसे कर्त्ता के रूप में जो वस्तुजगत् के साथ अन्त:क्रिया करता है। सही मायनों में मानव-अस्तित्व को प्रामाणिकता के मानक से संचालित श्रेणियों के समूह से ही समझा जा सकता है। अस्तित्ववाद के अनुसार समस्त सिद्धान्तों और विचारों का जन्म मानव के चिन्तन से उसके बाद हुआ है। चूँकि मनुष्य का अस्तित्व चिन्तन और विचार से पहले है इसलिए वही प्रमुख और महत्त्वपूर्ण है, विचार और चिन्तन नहीं।

अस्तित्ववादी मानते हैं कि मानवीय परिवेश हमें अपने निर्णय लेने हेतु बिना किसी मार्गदर्शन के पूर्ण स्वतन्त्रता देता है और इसलिए उन निर्णयों की पूरी ज़िम्मेदारी भी मनुष्य की ही है। अपने कार्यों, विश्वासों और निर्णयों की स्वयं की एकान्तिक ज़िम्मेदारी मनुष्य के अत्यधिक दु:ख और चिन्ता का कारण भी बनती है। मनुष्य को इस दु:ख और चिन्ता का सामना करना चाहिए, उनसे दूर नहीं भागना चाहिए। यदि वह इनसे पलायन करने का प्रयास करता है तो फिर आत्म-छल से भरा जीवन ही उसका भविष्य है। अस्तित्ववाद के अनुसार लोग मानव-अस्तित्व के सर्वाधिक उग्र रूपों की परख से ही अपने बारे में अच्छी तरह सीखते हैं। मृत्यु का भय, संत्रास, ऊब, अर्थपूर्ण सम्बन्धों के निर्वाह की कठिनाई, जीवन की विसंगतियाँ और अलगाव मनुष्य-जीवन के अनिवार्य पक्ष हैं।

अस्तित्ववादी चिन्तन की दो धाराओं हैं। पहली के अन्तर्गत वे चिन्तक आते हैं जो अनीश्वरवादी हैं। इन विचारकों ने मनुष्य को अकेला और असहाय माना है। नीत्शे ने कहा था कि ईश्वर मर चुका है। हेडेगर और सार्त्र इसी धारा के अस्तित्ववादी हैं। दूसरी धारा में किर्केगार्ड, कार्ल यास्पर्स और गैब्रियल मार्सल आदि के विचार आते

हैं। इस धारा के अनुसार संसार में निरर्थक जीवन को सार्थकता प्रदान करने और उसे अर्थपूर्ण बनाने के लिए ईश्वर में आस्था अनिवार्य है।

### 4.3.07. अस्तित्ववाद का उद्भव और विकास

अस्तित्वादी चिन्तन के स्रोत प्लेटो और अरस्तू के विचारों में खोजे जा सकते हैं। मनुष्य को महत्त्व देने की इनकी दृष्टि अस्तित्ववाद की प्रेरणा रही है। रेने देकार्त ने 'अस्तित्व' शब्द का विशेष अर्थ में प्रयोग किया है। उनका कथन प्रसिद्ध है कि "मैं सोचता हूँ, इसलिए मेरा अस्तित्व है"। देकार्त के लिए अस्तित्व सोचने के गुण से निर्धारित होता है। यह बात अस्तित्ववाद के आधारभूत विचार से अलग है। यद्यपि किर्केगार्द और नीत्शे के रूप में अस्तित्ववाद की जड़ें उन्नीसवीं सदी में मौजूद हैं, लेकिन इसका प्रभाव बीसवीं सदी में पूरी तरह से प्रकट हुआ है। जर्मन दार्शनिकों – मार्टिन हेडेगर और कार्ल यास्पर्स ने 1920 और 1930 के दशकों में इस चिन्तन-धारा का आधार तैयार किया था। आगे चलकर फ्रांस के ज्याँ पाल सार्त्र के महत्त्वपूर्ण लेखन तथा सिमोन द बाउवार, अल्बर्ट कामू और मौरिस मर्लऔ पोंटी आदि अन्य अस्तित्ववादी चिन्तकों ने अपने लेखन में इसका विकास किया।

किर्केगार्द और नीत्शे दोनों ने अपने चिन्तन में आत्म-तत्त्व को बहुत महत्त्व दिया है तथा व्यक्ति की इच्छा को निपट तार्किकता और संकल्पनात्मक वस्तुगतता से अधिकमहत्त्व प्रदान किया है। हेडेगर का विचार 'विश्व में होना' और सार्त्र की 'सार से पहले अस्तित्व' की अवधारणा अस्तित्ववाद के दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विचार रहे हैं। इन विचारों का प्रभाव दर्शनशास्त्र की सीमाओं से बाहर मनोविज्ञान और कलाओं के क्षेत्र में भी व्यापक रूप से पड़ा। किर्केगार्द, नीत्शे, यास्पर्स, मार्सल, हेडेगर और सार्त्र को अस्तित्ववाद के मुख्य चिन्तक माना जाता है। यद्यपि इन सभी के चिन्तन में पर्याप्त विविधता और कई मुद्दों पर अलग-अलग विचार मिलते हैं, लेकिन कुछ सामान्य लाक्षणिकताओं की पहचान के आधार पर अस्तित्ववाद को चिन्तन की एक अलग धारा के रूप में पहचाना जा सकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कुछ दार्शनिकों और लेखकों को समाज के नियम और विचार अविश्वसनीय लगने लगे। उन्हें दुनिया एक ऐसा स्थान लगाने लगा जिसमें कोई सार्वभौमिक नियम या व्यवस्था नहीं है। इसलिए उन्होंने व्यक्ति की सामाजिक अपेक्षाओं के स्थान पर व्यक्ति के स्वयं द्वारा रचित अर्थ को खोजना शुरू किया।

फ्रेड्रिक नीत्शे (1844–1900) पश्चिमी दर्शन और संस्कृति, विशेष रूप से प्लेटो और ईसाईयत, का आलोचक था। नीत्शे ने महसूस किया कि मनुष्य का स्वरूप और पहचान उसके विश्वासों और सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर करते हैं। उसने मानव की स्वयं के निर्माण और पुनर्निर्माण की क्षमताओं का बार-बार उल्लेख किया है। उसने देखा कि उन्नीसवीं सदी में 'उच्चतम मूल्य' स्वयं का अवमूल्यन करने लगे थे। सत्य-वचन का ईसाई आदर्श विज्ञान के रूप में संस्थाबद्ध होकर ईश्वर पर विश्वास को कमज़ोर कर रहा है। विज्ञान विश्व को ईश्वर से विमुख कर रहा है और इसके पूर्व-प्रदत्त नैतिक अर्थ को समाप्त कर रहा है। इस स्थिति में व्यक्ति को उसी के भरोसे छोड़ दिया

गया है। ऐसे में यदि उसका आत्म कमज़ोर है तो वह नास्तिवाद (विश्व में कोई अन्तर्निहित अर्थ नहीं है ) के कारण निराशा का शिकार हो जाएगा। वहीं एक मज़बूत या ऊर्जावान व्यक्ति के लिए नास्तिवाद मुक्तिकारक अवसर प्रदान करता है ताकि वह विश्व को एक अर्थ दे सके, अपने मूल्यों के मूल्यांतरण द्वारा श्रेष्ठता पर आधारित एक व्यवस्था स्थापित कर सके। नीत्शे ने मनुष्य के अस्तित्व सम्बन्धी ऐसे पहलू का उद्घाटन किया है जिसे न तो तात्कालिक अभिप्रेरणों और रुझानों की तरह समझा जा सकता है और न ही व्यवहार के किसी सार्वभौमिक नियम की तरह। यह एक ऐसा पहलू है जिसे उसके होने के ढंग से ही समझा जा सकता है। किर्केगार्ड और नीत्शे दोनों ने इस अत्यन्त जटिल एवं अस्पष्ट विचार को व्यवस्थित तरीके से विकसित नहीं किया।

डेनमार्क के धर्मचिन्तक और दार्शनिक सोरेन किर्केगार्द (1813–55) अस्तित्ववाद के मुख्य प्रणेता हैं, वे अस्तित्ववाद की आस्तिक धारा के मुख्य प्रस्तोता हैं। मनुष्य के मनोविज्ञान और ईसाई नैतिकता में उनकी गहरी रुचि थी। उन्होंने ईसाई धर्म की सांप्रदायिक दृष्टि की आलोचना की और ईसाई धर्म की अस्तित्ववादी व्याख्या की। वे ईश्वर की खोज किसी वस्तुनिष्ठ सत्ता के रूप में नहीं करते, बल्कि व्यक्ति की आन्तरिकता या आत्मपरकता में करते हैं। "मैं सत्य को तब तक नहीं जान सकता जब तक वह मुझ में जीवन्त न हो जाय।" उनका मुख्य ज़ोर इस बात को समझने में था कि लोग संकटों का सामना कैसे करें और उन्हें अपने जीवन के तरीकों का चयन करने की स्वतन्त्रता कैसे मिले। इन्होंने हीगल के विचारों का विरोध किया और कहा कि संसार में केवल व्यक्ति ही सत्य है, कोई भी विचार या सिद्धान्त व्यक्ति से ऊपर नहीं है। मनुष्य की स्वतन्त्रता से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।

किर्केगार्द के अनुसार मनुष्य का मन परस्पर विरोधी विचारों से भरा हुआ होता है। विचारों के विरोधी स्वरूप के कारण उसके मन में सदैव दुविधा और द्वन्द्व बना रहता है। यह द्वन्द्व उसके दु:ख का कारण बनता है। दु:ख और सन्ताप मनुष्य के जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। वह इन्हें सहन करता है और अपने बारे में कुछ निर्णय लेना है। किर्केगार्द के अनुसार दु:ख और वेदनाएँ हमें अपने अस्तित्व का ज्ञान कराती हैं, उन्हीं से हमें मृत्यु के बारे में पता चलता है। सत्य की वस्तुगतता को नकारते हुए वह कहता है कि केवल व्यक्ति सत्य है और हमें अपने अस्तित्व का बोध स्वयं से होता है, अत: सत्य की वस्तुगत सत्ता नहीं है, वह आत्मगत होता है। आत्मगतता का विचार मानव-अस्तित्व की असीमित व्यापकता का द्योतक है। इसे वस्तुगतता के ठीक विलोम के रूप में नहीं समझा जा सकता, बल्कि यह इससे परे है। ज्ञान सदैव सीमित होता है इसलिए यह पूरी तरह से नहीं बता सकता कि मनुष्य क्या हैं और कौन हैं। अत: मनुष्य होने का पूर्ण ज्ञान भोगे हुए अनुभव के रूप में अपने भीतर से ही हो सकता है, न कि अन्य किसी भी बाहरी सिद्धान्त या वस्तुनिष्ठ परिभाषा से।

मार्टिन हेडेगर (1889–1976) के अनुसार दार्शनिक चिन्तन का लक्ष्य मूल सत् अर्थात् होने का अन्वेषण करना है। इस मूल या तात्त्विक सत् को की अनुभूति स्वयं मनुष्य में और उसके द्वारा ही हो सकती है। यह अस्तित्ववान मनुष्य ही तात्त्विक सत् अर्थात् होने का आधार है। मानव-अस्तित्व के दो रूप हैं। एक रूप में वह अन्य तत्त्वों जैसे एक पेड़, एक पर्वत आदि की तरह अस्तित्वमान है। लेकिन मानव-अस्तित्व इससे अधिक है। वह अस्तित्व की चेतना के साथ अस्तित्वमान है। यही मानव-अस्तित्व की विशिष्टता है। हेडेगर कहता है कि "मैं" एक सत्ता हूँ जिसका सार केवल होना है, होने के अलावा कुछ नहीं।

ज्याँ पाल सार्त्र (1905-1980) के अनुसार ईश्वरविहीन संसार में मनुष्य उद्देश्य निश्चित करके मानवीयता अर्जित करता है। व्यक्ति की सत्ता का गठन प्रकृति या संस्कृति द्वारा नहीं होता है, बल्कि व्यक्ति के होने का अर्थ ही उसकी सत्ता का गठन है। 1960 में सार्त्र ने अपनी नई पुस्तक 'क्रिटीक ऑफ डायलेक्टिकल रीज़न' के प्रथम खण्ड के प्रकाशन के बाद मार्क्सवाद के साथ अस्तित्ववाद के समन्वय का प्रयास किया। यहाँ आकर सार्त्र के विचारों में उल्लेखनीय परिवर्तन होता है। वह मानता है कि लेखक को सदैव स्वतंत्रता का पक्ष लेना चाहिए। 'साहित्य क्या है?' (1948) में सार्त्र 'प्रतिबद्ध साहित्य' की अवधारणा प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार साहित्य-सृजन में लेखक सदैव या तो नस्लवाद और पूंजीवादी शोषण जैसी अस्वतंत्र स्थितियों से मनुष्य की मुक्ति की राह खोजता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह स्वयं में अन्तर्विरोध उत्पन्न करता है क्योंकि लिखने के विचार में पाठक की स्वतन्त्रता का विचार निहित है। इस विचार में सार्त्र का राजनीतिक स्वतन्त्रता का मूल्य लक्षित होता है। प्रतिबद्धता के आग्रहों ने सार्त्र के इस विचार का निर्माण किया कि अस्तित्ववाद 'मार्क्सवाद' के रूप में उपलब्ध हमारे समय के मुख्य दार्शनिक चिन्तन के भीतर एक 'विचारधारात्मक' क्षण था।

### 4.3.08. अस्तित्ववाद की मुख्य विशेषताएँ

अस्तित्ववाद में कुछ ऐसे मुख्य विषय और अवधारणाएँ हैं जो सभी चिन्तकों के लिए किसी न किसी रूप में महत्त्वपूर्ण हैं।

#### 4.3.08.1. सार से पहले अस्तित्व

'सार' वह तत्त्व है जो किसी भी निर्माण या सृजन से पूर्व निर्माणकर्ता के मन में होता है। यदि सार-तत्त्व को अस्तित्व से पहले होना माना जाता है तो इसका अर्थ यह निकलता है कि व्यक्ति पहले अस्तित्व में आता है, उसके बाद वह स्वयं अपने सार अर्थात् अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है। सार्त्र का कथन – "सार से पहले अस्तित्व" – अस्तित्ववाद के विशिष्ट अर्थ को समझने में सहायक है। मनुष्य के होने की कोई व्याख्या या अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि उसका अर्थ होने में और होने के द्वारा ही तय होता है। मनुष्य का आत्मगत ज्ञान ही मूल्य निर्धारण का एकमात्र तरीका और पैमाना है।

#### 4.3.08.2. तथ्यता

हेडेगर के अनुसार मानव-अस्तित्व का एक प्रमुख लक्षण है कि अस्तित्व की अनुभूति में उसकी तथ्यता की अनुभूति है अर्थात् उसका अस्तित्व एक तथ्य है। यह तथ्यता वस्तुनिष्ठ, प्राकृतिक अथवा भौतिक तथ्य के समान नहीं है। इन अनुभूति का अर्थ है कि ' मैं हूँ और मुझे रहना है'। मैं कहाँ से आया, मैं कैसे आया या मेरा क्या स्वरूप है , ये बातें छिपी हुई हैं लेकिन यह स्पष्ट है कि 'मैं हूँ'। यह तथ्यता हमारे अस्तित्व में है इसलिए उसे अपने से अलग शुद्ध विषय नहीं बनाया जा सकता। मानव-अस्तित्व की तथ्यता का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभूति है कि वह 'है' और उसे दुनिया में रहना है।

### 4.3.08.3. लोकोत्तरता (परात्मकता)

कार्ल यास्पर्स (1883–1969) के अनुसार स्वतंत्र अस्तित्व की न तो कोई परिभाषा दी जा सकती है और न ही उसके बारे में निश्चयपूर्वक कुछ बताया जा सकता है। मनुष्य का अस्तित्व जगत् में है और अपने सचेतन चिन्तन में वह 'आत्म' एवं 'जगत्' के द्वैत में उलझकर भी इससे ऊपर उठने का सतत प्रयास करता है। यह ऊपर उठना, यह अनुभवातीत अवस्था या परात्मकता ही जीवन की परम् वास्तविकता है। आत्म और जगत् के सम्पर्क की चेतना में उससे ऊपर उठने की चेतना भी है। ऊपर उठने की इस चेतना के अनुरूप स्वतंत्र-अस्तित्व में विश्वास उत्पन्न होता है। यास्पर्स के अनुसार ऊपर उठाने की अनुभूति अर्थात परात्मकता ही स्वतंत्र अस्तित्व में विश्वास का आधार है। अन्तत: यह स्वतंत्र अस्तित्व ईश्वरीय अस्तित्व है जिसे मानने का आधार आस्था है, और इस आस्था को ऊपर उठने की अनुभूति से बल मिलता है। यह लोकोत्तरता जीवन का ऐसा आधार बन सकती है आधुनिक मानव अपनी मानवीयता,अपनी विशिष्टता को सार्थक ढंग से प्रतिष्ठित कर सकता है।

### 4.3.08.4. प्रामाणिकता

प्रामाणिकता आत्म-निर्माण की अवस्था को परिलक्षित करती है। सार्त्र के अस्तित्ववाद में ईश्वर का अवलम्ब नहीं है। वह मनुष्य के अस्तित्व को एकाकीपन की चेतना कहता है तथा उसके अनुसार इस चेतना को ही अपनी योजनाओं के निर्माण की स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्रता के साथ दायित्व-बोध भी चेतना की विशेषता है। इसी से मनुष्य के अन्तर में कुछ स्ववृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं जो उसके अस्तित्व से एकाकार होती हैं। मनुष्य की मानवीयता उसके दायित्व-बोध में है। अपनी गरिमा बनाए रखने पर ही उसके जीवन की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। प्रामाणिकता का आशय अपने दायित्वों को ध्यान में रखते हुए अपने निर्णयों को रूपाकार प्रदान करना तथा पुन: उसके परिणामों के अनुसार जीवन के निर्णय लेना है।

### 4.3.08.5. स्वतन्त्रता, मूल्य और दायित्व-बोध

अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य का आत्मगत ज्ञान ही मूल्य निर्धारण का एकमात्र तरीका और पैमाना है। मनुष्य जब अपना निर्णय लेता है, योजना बनाता है, तब उसमें मूल्य निहित होता है। उसके निर्णय आत्मगत होते हैं, साथ ही मूल्यगत होते हैं। मनुष्य अपनी सत्ता, व्यक्तित्व और मूल्य-व्यवस्था का स्वयं चयन करता है और इन सबके लिए वही उत्तरदायी है। अत: वह वास्तव में स्वतंत्र है। सार्त्र के शब्दों में "मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है।" स्वतन्त्रता एक सतत् प्रवाह है जो मनुष्य के प्रत्येक निर्णय और कार्य में नए-नए रूप में अभिव्यक्त होता है। स्वतन्त्रता के अभाव में मानव-अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। स्वतन्त्रता में दायित्व-बोध अन्तर्निहित है। व्यक्ति आत्म-निर्णय से अस्तित्व में होता है। यह बहुत बड़ा दायित्व है। दायित्व की भावना व्यक्ति में जितनी 'स्वयं के प्रति' होती है उतनी 'अन्य के प्रति' भी होती है। चिन्ता, सन्ताप, निराशा आदि मानसिक दशाओं का सम्बन्ध दायित्व-बोध है। गेब्रियल मार्सल (1889-1973) के अनुसार स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्ति में निहित अव्यक्त शक्तियों का व्यक्त हो जाना है। स्वतन्त्रता व्यक्ति में निहित है लेकिन प्राथमिक स्थिति में वह अव्यक्त रहती है। उसका अनुभव तब होता है जब वह व्यक्त हो जाती है। स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्ति में निहित अपने से परे

जाने की शक्ति है। यह व्यक्ति के खुल जाने अर्थात् अभिव्यक्त होने की अवस्था है। इसी विशिष्टता के कारण मनुष्य अन्य जीवों से अलग और श्रेष्ठ है। स्वतन्त्रता नयी दिशाओं की ओर बढ़ने की सतत् प्रेरणा है। स्वतन्त्रता के इस स्वरूप का अवबोध हमें अस्तित्व की वास्तविक अनुभूति में ही होता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति ईश्वर को भी आत्मसात् कर सकता है।

### 4.3.08.6. शून्यता या अभाव

सार्त्र के अनुसार मानव-चेतना का लक्ष्य आत्म को स्व-अस्तित्व की तरह अनुभूत करना है। यह लक्ष्य असम्भव है क्योंकि 'आत्म-अस्तित्व' की चेतना 'जो नहीं है' उसकी चेतना है अर्थात् सम्भावनाओं की चेतना है, जो अभी वास्तविक या प्रकट नहीं हुई हैं। इन सम्भावनाओं को व्यक्त करने, स्वीकार या अस्वीकार करने का निर्णय भी व्यक्ति में निहित है। यहीं पर मनुष्य की मौलिक स्वतन्त्रता में निखार आ जाता है। वस्तुत: मनुष्य जो नहीं हो सकता वही होने की आकांक्षा रखता है। यही उसका स्वरूप है। इसलिए यह 'नहीं होना' अर्थात् 'शून्यता' या 'अभाव' मानव-अस्तित्व का स्वरूप है।

### 4.3.08.7. प्रतिवाद

अस्तित्ववाद अतिबौद्धिकता के विरुद्ध एक प्रतिवाद है। उसके अनुसार हीगल आदि की चिन्तन-प्रणाली मानवीय समस्याओं को समझने की दृष्टि से अनुपयुक्त है। उसके अनुसार तार्किकता और बौद्धिकता के द्वारा मानवीय सत्यों को आत्मसात् नहीं किया जा सकता। इन सत्यों को अनुभूत करना होता है। यदि अतिवैज्ञानिकता अमानवीयकरण को बढ़ावा देने लगे तो अस्तित्ववाद इसके विरुद्ध प्रतिवाद करता है। अस्तित्ववाद व्यक्ति की उपेक्षा के विरुद्ध भी प्रतिवाद है।

### 4.3.08.8. चिन्ता, वेदना और निराशा

मनुष्य की यह अनुभूति कि उसका जीवन उसी के स्वतंत्र निर्णय पर निर्भर करता है, उसमें चिन्ता उत्पन्न करती है। स्वतन्त्रता में अन्तर्निहित दायित्व-बोध चिन्ता का कारण है। स्वयं और अन्य के प्रति सतत् दायित्व और यह अनुभूति कि वही एकमात्र कर्त्ता है, चिन्ता पैदा करती है। यह चिन्ता किस विषय मे है यह पता नहीं है और यह अनभिज्ञता मनुष्य में वेदना और सन्ताप को जन्म देती है। सार्त्र के अनुसार मानवीय अस्तित्व की विडम्बना यह है कि उसके अपने स्वतंत्र निर्णय जो योजनाएँ बनाते हैं वे केवल सम्भावनाएँ होती हैं, निश्चित नहीं, जबकि उनके प्रति पूर्ण उत्तरदायित्व उसका होता है। इन योजनाओं के सम्बन्ध में उसके निर्णय केवल 'सम्भावनापूर्ण' ही होते हैं, निश्चयात्मक नहीं। अनिश्चितता की यह अनुभूति उसमें निराशा उत्पन्न करती है। हम निर्णय ले रहे हैं, उन्हें कार्य-रूप दे रहे हैं लेकिन यह नहीं जानते कि हम इसमें सफल होंगे या असफल। यही असमंजस और अनिश्चितता निराशाजनक है। किर्केगार्द के अनुसार चिन्ता की उत्पत्ति शून्यता या अभावता के अनुभव से होती है। इस स्थिति में मनुष्य को लगता है कि उसे उसके कार्यों से विमुख कर दिया गया है। इस

स्थिति में हम कोई भय महसूस नहीं करते बल्कि उस शून्यता से ही आतंकित होते हैं जिसमें हमें फेंक दिया गया है।

### 4.3.08.9. असंगतता

असंगतता का विचार अस्तित्ववाद का एक प्रमुख विचार है। मानव अस्तित्व एक असंगत और अतार्किक अस्तित्व है। प्रकृति में समग्र रूप से कोई योजना और कारण नहीं है। मनुष्य योजना और कारण के 'अभाव' के प्रति सचेत होता है। कामू के शब्दों में "मानव-अस्तित्व का मूल दृश्य प्रकृति की इस मूक अतार्किकता से संघर्ष है।" अस्तित्व के आत्मगत होने यानी 'स्वयं होना' के तर्क में भी असंगति है। मनुष्य अपने नियम स्वयं बनाता है, अपने निर्णय स्वतन्त्रता से लेता है लेकिन वह नहीं जानता कि उसके निर्णयों और योजनाओं का क्या होगा। असंगति इस विचार में भी अन्तर्निहित है कि उसका स्वतंत्र कार्य अन्तत: दुनिया का कार्य हो जाता है, उसकी स्वतन्त्रता छिन जाती है।

अस्तित्ववाद मनुष्य के अस्तित्व और अवस्था, जगत् में उसके स्थान और प्रकार्य तथा ईश्वर के साथ उसके सम्बन्ध या असम्बन्ध की दार्शनिक दृष्टि है। किर्केगार्द ने इस विश्वास को प्रस्तुत किया और उसकी व्याख्या की कि ईश्वर में और ईश्वर के द्वारा मनुष्य तनाव और असंतोष से मुक्ति प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार मानसिक शान्ति एवं आध्यात्मिक परम सुख का अनुभव कर सकता है। सार्त्र के अनुसार मनुष्य अपने होने के ढंग का चयन करता है लेकिन उसका होना उससे परे है। मनुष्य ईश्वरविहीन संसार में उद्देश्य निश्चित करके मानवीयता अर्जित करता है। वह जीवन में स्वतंत्र चयन द्वारा अपने अस्तित्व को प्रामाणिक बनाता है। सार्त्र का विचार है कि मनुष्य सामाजिक प्रक्रियाओं में सक्रियता से भाग लेकर अपने होने को सार्थक बना सकता है, आत्म-बोध प्राप्त कर सकता है।

### 4.3.09. अस्तित्ववाद का साहित्य पर प्रभाव

अस्तित्ववादी चिन्तन के स्वरूप और मान्यताओं पर विचार के बाद साहित्य पर इसके प्रभाव पर भी विचार करना आवश्यक है। विश्व भर में अनेक लेखक इस विचारधारा से प्रभावित हुए हैं। इनमें से अधिकांश लेखकों ने इस विचारधारा में अपने योगदान से इसका विकास किया है। फ़्योदोर दोस्तोव्येस्की, टी. एस. इलियट, जेम्स जॉइस, अलबेर कामू, फ़्रांज काफ़्का आदि इस चिन्तन से प्रभावित लेखक माने जाते हैं। इसके साहित्यिक प्रभाव के सन्दर्भ में सार्त्र के उपन्यासों, विशेष रूप से 'नौज़िअ'(1938) और नाटकों तथा उनके दार्शनिक लेखन में अभिव्यक्त विचार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। सार्त्र निरीश्वरवादी अस्तित्ववाद के प्रतिनिधि चिन्तक हैं। इनके साहित्य चिन्तन का मुख्य आधार वैयक्तिक ज़िम्मेदारी और प्रामाणिकता में अन्तर्भुक्त मानवीय स्वतन्त्रता है।

सार्त्र ने साहित्य और कलाओं की सामाजिक सम्बद्धता को प्रमुखता दी है। सार्त्र का विचार है कि किसी भी रचना में कोई पूर्व निर्धारित अर्थ नहीं होता है। उसका अर्थ पाठक द्वारा पढ़े जाने पर पूर्णता प्राप्त करता है। रचना की अनिवार्य शर्त लेखक की स्वतन्त्रता है, पाठक को उस रचना से अपना अर्थ ग्रहण करने की स्वतन्त्रता

है। अत: लेखक और पाठक दोनों की स्वतन्त्रता रचना को पूर्णता प्रदान करती है। लेखक अपनी रचना और रचना-प्रक्रिया का चयन करता है। अत: लिखने का अर्थ स्वतन्त्रता का चयन करना है। मनुष्य होने के नाते हमें कोई सार या स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ है, लेकिन हमें अपने अस्तित्व के इस अर्थहीन और असंगत जगत् में अपने मूल्य और अर्थ भरने हैं। व्यक्ति अपने स्वतंत्र निर्णयों के आधार पार सामाजिक और राजनीतिक रूप से प्रतिबद्ध होकर अपने अस्तित्व की असंगतता से छुटकारा पा सकता है।

अस्तित्ववाद से प्रभावित साहित्य में मुख्य रूप से मूल्यों के विघटन की समस्या तथा व्यक्ति की वेदना, निराशा और चिन्ता के भावों को अभिव्यक्ति मिली है। व्यक्ति स्वातंत्र्य, आत्म-निर्वासन और एकाकीपन को मुख्य विषय बनाकर अनेक रचनाएँ लिखी गईं। एक आन्दोलन के रूप में 'विसंगत नाटक' ( द थियेटर ऑफ एबसर्ड ) अस्तित्ववाद से प्रेरित घटना थी। एबसर्ड का अर्थ है – बेतुका या अर्थहीन। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उपजी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों में व्यक्ति के अस्तित्व का अर्थ और उद्देश्य खो गए लगते थे। व्यक्ति इस दुनिया में अपने अस्तित्व का कोई अर्थ या प्रयोजन महसूस नहीं कर रहा था। ऐसे परिवेश में नाटकों की इस शैली में 'एबसर्ड' अर्थात् असंगत भाव को अर्थहीन व हास्यास्पद दुनिया और अदृश्य बाह्य शक्तियों द्वारा नियंत्रित कठपुतलियों जैसे मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। एबसर्ड के लेखक और प्रदर्शक मानते थे कि मनुष्य का जीवन और अन्य सभी क्रियाएँ बेतुकी और सारहीन हैं। इतना ही नहीं मृत्यु और पारलौकिक जीवन भी उतना ही निस्सार है, इसलिए व्यक्ति जीवित रहे या नहीं उसके कार्य निरर्थक ही हैं। एबसर्ड नाटकों में इसीलिए निराशा के आँसू नहीं दिखाए जाते, मुक्ति की हँसी दिखाई जाती है।

### 4.3.10. पाठ का सारांश

मनोविश्लेषणवाद सिगमंड फ्रायड के आधारभूत सिद्धान्तों और परवर्ती मनोवैज्ञानिकों के महत्त्वपूर्ण योगदान से निर्मित एक मनोवैज्ञानिक पद्धति है। इसके अन्तर्गत मनुष्य की मानसिक संरचना और प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य का जीवन उसके अवचेतन मन से जितना संचालित होता है उतना चेतन मन से नहीं। मुख्य रूप से व्यक्ति की दमित कामनाएँ और यौन इच्छाएँ उसके सम्पूर्ण जीवन-व्यवहार का निर्धारण करती हैं। मनोविश्लेषणवाद के अनुसार मानव-जीवन के असली द्वन्द्व और संघर्ष उसके मानस-जगत् में घटित होते हैं। फ्रायड का विश्वास था कि हमारा अवचेतन हमारे बाल्यकाल की घटनाओं से प्रभावित और प्रेरित होता है।

एडलर, युंग, लकाँ आदि ने मनोविश्लेषणवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आलोचकों का विश्वास है कि मनोविश्लेषण की अवधारणाओं के आधार पर हम रचना के सम्बन्ध में अपनी समझ बढ़ा सकते हैं। लेखक और रचना के पात्रों के व्यवहार के आधार पर उनकी मानसिक संरचना को पहचाना जा सकता है।

अस्तित्ववाद भाववाद और बुद्धिवाद के प्रतिवाद में उभरा एक दार्शनिक सिद्धान्त है। इसमें मनुष्य चिन्तन का मुख्य केन्द्र है। मनुष्य का अस्तित्व उसके सार या भाव से पहले है। मनुष्य अपने आत्म को स्वयं निर्धारित करता है। वह अपने निर्णय के लिए स्वतंत्र है। इस स्वतन्त्रता में दायित्व का बोध समाहित है क्योंकि

उसने चयन किया है कि वह अपने लिए निर्णय ले। मनुष्य जीवन की प्रामाणिकता चयन की स्वतन्त्रता और दायित्व-बोध में निहित है। दायित्व-बोध से व्यक्ति में चिन्ता और निराशा उत्पन्न होती है क्योंकि उसके अपने निर्णयों और योजनाओं के सम्बन्ध में सदैव अनिश्चितता बनी रहती है।

अस्तित्ववाद का दार्शनिक चिन्तन और कलात्मक सृजन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। सार्त्र स्वयं एक बड़े लेखक थे। सिमोन द बाऊवार, अलबेर कामू और फ्रांज काफ़्का प्रसिद्ध अस्तित्ववादी साहित्यकार थे।

### 4.3.11. उपयोगी पुस्तकें और सन्दर्भ

#### 4.3.11.1. हिन्दी की पुस्तकें

1. तिवारी, डॉ॰ रामचन्द्र. (2016). भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी-आलोचना, वाराणसी. विश्वविद्यालय प्रकाशन. ISBN : 978-81-7124-764-6.

2. मसीह, डॉ॰ या. (1999). मनोविश्लेषण और फ्रायडवाद की रूपरेखा. दिल्ली. मोतीलाल बनारसीदास.

3. लाल, बसंत कुमार. (2005). समकालीन पाश्चात्य दर्शन की रूपरेखा. दिल्ली. मोतीलाल बनरसीदास.

4. शर्मा, रामविलास. (1997). नई कविता और अस्तित्ववाद. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

#### 4.3.11.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें

1. Abrams, M.H. and Harpham, Geoffrey Galt, (2015). A Glossary of Literary Terms,11e. Delhi. Cengage Learning. ISBN-13:978-81-315-2635-4

2. Eagleton, Terry. (2003). Literary Theory: An Introduction, 2e. Minnesota. Blackwell Publishers Ltd. ISBN – 0-9166-1251-X

3. Flynn, Thomas. (2006).Existentialism: A Very Short Introduction. Oxford, UK. Oxford University Press. ISBN-13: 978-0-19-280428-0

4. Habib, M. A. R. (2005) . A History of Literary Criticism: From Plato to the Present. Malden, USA. Blackwell Publishing. ISBN-13: 978-0-631-23200-1

#### 4.3.11.3. इंटरनेट स्रोत

1. http://plato.stanford.edu/archives/spr2016/entries/existentialism/

2. www.iep.utm.edu/existent/

### 4.3.12. अभ्यास के लिए प्रश्न

1. फ्रायड के चेतना के स्तरों की व्याख्या कीजिए।

2. मनोविश्लेषण में अहम् रक्षा युक्तियों की क्या भूमिका है ?

3. फ्रायड के व्यक्तित्व-विकास के सिद्धान्त का क्या महत्त्व है ?

4. युंग की 'सामूहिक अचेतन' की अवधारणा पर टिप्पणी कीजिए।

5. 'दर्पण-प्रतिबिम्ब' (मिरर-इमेज) सिद्धान्त क्या है ?

6. 'हीनता मनोग्रन्थि' की व्याख्या कीजिए।

7. "सार से पहले अस्तित्व" से क्या तात्पर्य है ?

8. अस्तित्ववाद के अनुसार स्वतन्त्रता और दायित्व-बोध का क्या सम्बन्ध है ?

9. मनुष्य की चिन्ता और निराशा की व्याख्या अस्तित्ववादी किस प्रकार कराते हैं ?

10. 'एबसर्ड थियेटर' पर एक टिप्पणी लिखिए।

❖❖❖